युक्त कहा जाता है। श्रील रूप गोस्वामिचरण ने **युक्तवैराग्य** नामक इस अवस्था का विशद विवेचन किया है।

श्रील रूप गोस्वामिचरण कहते हैं कि जब तक हम इस प्राकृत-जगत् में हैं, तब तक कर्म करना होगा; हम क्रियाहीन कभी नहीं हो सकते। अतएव यदि कर्म किए जायें और उनका फल श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया जाय तो उसे **युक्तवैराग्य** कहा जायगा। ये संन्यासयोग की क्रियाएँ चित्त रूपी दर्पण का मार्जन कर देती हैं। इसके फलस्वरूप, शनैः शनैः भागवत-पथ पर अग्रसर होता हुआ साधक पूर्ण रूप से श्रीभगवान् के शरणागत हो जाता है और अन्त में विशिष्ट मुक्तिलाभ करता है। मुक्ति का अर्थ ब्रह्मज्योति' से एकत्व को प्राप्त होना नहीं वरन् वह तो श्रीभगवान् के धाम में प्रवेश करना है। स्पष्ट कहा है: **मामुपैष्यसि**—"वह अपने घर — मेरे पास लौट आता है।" मुक्ति पाँच प्रकार की है। परन्तु यहाँ उल्लेख है कि जो सम्पूर्ण जीवन में भगवत्-आज्ञा का पालन करता है, वह भक्त उस अवस्था को प्राप्त हो जाता है, जहाँ से देह का अन्त होने पर वह भगवद्धाम में प्रविष्ट होकर साक्षात् श्रीभगवान् का संग कर सकता है।

भगवत्सेवा में जीवन समर्पित कर देने के अतिरिक्त जिसकी कोई रुचि नहीं, कोई स्वार्थ नहीं है, वह वास्तव में 'संन्यासी' है। ऐसा मनुष्य सदासर्वदा अपने को श्रीभगवान् का नित्यदास मानता है, भगवत्-संकल्प के आश्रित रहता है। इसलिए वह जो कुछ कर्म करता है, श्रीभगवान् के परितोष के लिये ही करता है। इससे उसके सारे कर्म भगवत्सेवामय बन जाते हैं। वह वेदविहित सकाम कर्म और स्वधर्म को महत्त्व नहीं देता। सामान्य पुरुषों के लिए ही वैदिक स्वधर्म का पालन अनिवार्य है। परन्तु फिर भी पूर्ण रूप से भगवत्सेवानिष्ठ शुद्धभक्त वैदिक विधान के विपरीत आचरण नहीं करता, यद्यपि कभी-कभी ऐसा लगता है।

वैष्णव आचार्यों का कथन है कि मूर्धन्य मनीषी भी शुद्धभक्त के संकल्प और क्रिया-कलाप के भाव को समझ नहीं सकता—**वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह न बुझय**। इस प्रकार, जो मनुष्य नित्य-निरन्तर भगवत्सेवा में तत्पर रहता है अथवा सदा इस चिन्तन में निमग्न रहता है कि किस प्रकार भगवान् की सेवा की जाय, वह देह का अन्त होने पर मुक्तिलाभ करता हो, ऐसा नहीं; वह तो वर्तमान में भी पूर्णरूप से मुक्त ही है। उसके लिए अपने घर—भगवद्धाम की प्राप्ति निश्चित है। श्रीकृष्ण के समान वह भी किसी लौकिक आलोचना का विषय नहीं हो सकता।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

समः=सम भाव रखता हूँ; **अहम्**=मैं; **सर्वभूतेषु**=सब जीवों में; **न**=न (कोई); **मे**=मेरा; **द्वेष्यः**=अप्रिय; **अस्ति**=है (और); **न**=न; **प्रियः**=प्रिय (है); **ये**=जो; **भजन्ति**=सेवा करते हैं; **तु**=परन्तु, **माम्**=मेरी; **भक्त्या**=भक्तिभाव से; **मयि**=